विचार

चेतना

चेतना, इंदौर 8/8/95

पर्यावरण बचाने की नाकाफी कोशिशें

■ आशीष कोठारी

आखिर सरदार सरोवर, नर्मदा, श्रीशैलम, तेलुगुगंगा, अपर कृष्णा, चमरा, बसपा, दुलहस्ती, दांतीवाड़ा, कोयना, सुवर्ण रेखा, अपर इंद्रावती तथा तीस्ता जैसी पनबिजली परियोजनाओं में समान चीज क्या है? इन सारी तथा ऐसी ही अन्य २०० परियोजनाओं की एक खासियत यह है कि इनके निर्माण में सरकारी नियमों का उल्लंघन हो रहा है और इसके बावजूद दोषी परियोजना अधिकारियों या संबंधित राज्य सरकारों के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गई है।

पर्यावरण-नियमों के बारे में केंद्र तथा राज्य सरकारों के घोर लापरवाही भरे रवैये का पर्दाफाश हाल ही में नदीघाटी एवं एवं पनबिजली परियोजनाओं के लिए नियुक्त पर्यावरण समीक्षा समिति (ईएसी) द्वारा किया गया है। यह समिति केंद्र सरकार के पर्यावरण तथा वन मंत्रालय द्वारा नियुक्त की गई है, और वही सभी परियोजना प्रस्तावों की जांच-पड़ताल करने के बाद उन्हें मंजूर या नामंजूर करने की सिफारिश करती है। कहने का तात्पर्य यह कि यदि इन शर्तों का पालन नहीं किया जाता तो निर्माण स्वीकृति स्वतः ही गैर-कानूनी हो जाती है। अतः इन परिस्थितियों में किए गए निर्माणों को अनुचित और अवैध माना जाना चाहिए।

> **पर्यावरण नियमों के बारे में केंद्र और राज्य सरकारों के घोर लापरवाही भरे रवैये का पर्दाफाश हाल ही में नदीघाटी एवं पनबिजली परियोजनाओं के लिए नियुक्त पर्यावरण समीक्षा समिति द्वारा किया गया है। यदि पर्यावरण नियमों का पालन नहीं किया जाता है तो निर्माण स्वीकृति स्वतः ही गैर-कानूनी हो जाती है। अतः इन परिस्थतियों में किए गए निर्माणों को अनुचित और अवैध माना जाना चाहिए।**

दुर्भाग्यवश ऐसा वास्तव में हुआ नहीं है और ऐसा एक या दो मर्तबा ही नहीं वरन् विगत १५ वर्षों में पर्यावरण और वन मंत्रालय द्वारा क्लियर की गई समस्त परियोजनाओं में से ९० प्रतिशत में हुआ। उल्लंघन होने के बावजूद मंत्रालय ने इनका निर्माण कार्य निर्बाध होने दिया। सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध के बाद से ही राज्य सरकारों को जिम्मेदारी सौंपी हुई है कि वे सारे सिंचाई तथा पनबिजली परियोजना प्रस्तावों को पर्यावरणीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए ही स्वीकृति प्रदान करें। इसके पीछे मंशा यह है कि परियोजना के पर्यावरणीय प्रभावों का आकलन उसके निर्माण के पूर्व ही कर लिया जाए, ताकि यह तय किया जा सके कि उसका निर्माण किया जाए या नहीं। या यदि किया जाए तो किन सुरक्षा उपायों के साथ?

कागजी शोर

पर्यावरण मंत्रालय के पास आने वाली परियोजनाओं में से बहुत कम को एकमुश्त खारिज किया जाता है। तथापि, अधिकांश मामलों में क्लियरेंस कुछ खास शर्तों के साथ दिया जाता है। सबसे ज्यादा सामान्य शर्तों में डूब में आने वाले क्षेत्र के समतुल्य क्षेत्र में प्रति पूरक वृक्षारोपण, विस्थापित होने वाले लोगों का पुनर्वास तथा पुनर्बसाहट, गाद बहकर आने को रोकने के लिए जल ग्रहण क्षेत्र का उपचार, निर्माणरत मजदूरों को ईंधन मुहैया करना है, ताकि वे इसके लिए आसपास के जंगल न काटें। दुर्लभ तथा लुप्तमान जाति के प्राणियों को संभव होने पर अन्यत्र भेजना तथा दलदलीकरण और सीलन रोकने के लिए कमान क्षेत्र का उपचार शामिल है।

पर्यावरण मंत्रालय की उक्त पर्यावरण संरक्षण समिति के सदस्यों की हैसियत से हाल ही में मंत्रालय द्वारा अतीत में क्लियर की गई परियोजनाओं की देखरेख संबंधी जानकारी मांगी। पर्यावरण मंत्रालय के छह क्षेत्रीय कार्यालयों के उन वैज्ञानिकों ने जो यह देखभाल करते हैं, व्यक्तिगत रूप से यह अभिप्रमाणित किया कि लगभग सभी मामलों में शर्तों का पालन पूरी तरह या पर्याप्त रूप से नहीं किया जा रहा है।

इन वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत जानकारी से पता चला कि पिछले डेढ़ दशक में कुल ३१९ परियोजनाओं का निकाल किया गया। इनमें १०२ तो शुरू ही नहीं हो पाईं। ७० परियोजनाएं पूरी हो चुकी हैं तथा १४२ पर काम चल रहा है। इनके बारे में उपलब्ध जानकारी से पता चलता है कि इनमें से ९० प्रतिशत ने उनकी निकासी शर्तों का पालन नहीं किया है। कुछ इलाकों खासतौर से उत्तरप्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, आंध्रप्रदेश, गोआ, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा केरल में हालात ज्यादा ही खराब हैं। जिन ८४ परियोजनाओं को क्लियर किया गया उनमें से एक ने भी शर्तों का पूरी तरह पालन नहीं किया।

म.प्र. की मान परियोजना के अधिकारियों ने योजना क्लियर हो जाने के उपरान्त पुनर्बसाहट सहायता-सुविधाओं में यह कहते हुए कटौती कर दी कि मुख्य अभियन्ता को ऐसा करने का अधिकार है। एक के बाद एक कितने ही उदाहरण ऐसे दिए जा सकते हैं, जिनसे पता चलता है पर्यावरण सुरक्षा उपायों के प्रति घोर दुर्लक्ष्य बरता गया है।

हमारी पर्यावरण प्रभाव समिति द्वारा और आगे जांच करने पर पता चला कि क्षेत्रीय कार्यालयों द्वारा शर्तों के परिपालन की वास्तविक स्थिति की रिपोर्ट नियमित रूप से भेजे जाने के बावजूद पर्यावरण मंत्रालय ने इस मर्तबा भी न तो निकास अनुमति वापस ली, न दोषी अफसरों का अभियोजन किया, जबकि १९८६ के पर्यावरण संरक्षण कानून के तहत उसे ऐसा करना का अधिकार प्राप्त हैं। इस स्थिति में सशर्त निकासी एक मखौल बन गई है और उसकी वकत मात्र एक रबर स्टाम्प से ज्यादा नहीं रह गई है।

असली समस्या

दिक्कत यह है कि निकासी आदेश तथा देखरेख (मॉनिटरिंग) की इस पूरी प्रक्रिया में ही खामियां हैं। पर्यावरण मंत्रालय को भेजे जाने वाले प्रभाव आकलन प्रतिवेदन अधूरे तथा लापरवाही से शोधित होते हैं। इसका कारण एक तो यह है कि स्वयं पर्यावरण मंत्रालय के निदेशक सिद्धांत ही स्पष्ट और सटीक नहीं हैं, और कुछ इसलिए कि परियोजनाओं के कर्ताधर्ता समूची प्रक्रिया को एक ऐसी औपचारिकता की तरह ले रहे हैं जिसे यथासंभव संक्षेप में निपटा दिया जाना चाहिए।

परियोजना अधिकारियों द्वारा अधूरे आंकड़े दिए जाने पर मंत्रालय जो और अधिक जानकारी भेजने को कहता है, उसके आने में महीनों लग जाते हैं और कई बार वह तब भी संतोषजनक नहीं होती। सरदार सरोवर को इसी ढंग से बेहद अधूरी जानकारी के बावजूद क्लियरेंस मिला और अतीत में इसी ढंग से कई अन्य बांधों का निकाल भी किया गया।

खुद मंत्रालय में स्टॉफ की बहुत कमी है और वह परियोजना प्रस्तावों की छानबीन करने के लिहाज से अपर्याप्त है। मूल्यांकन समिति के लिए भी उस जानकारी की प्रामाणिकता का आकलन करना कठिन होता है, जो अकसर बहुत ही स्थूल आधारित होती है। यह समिति कभी-कभी मैदानी दौरे भी करती है, लेकिन वे हमेशा सरसरी ही होते हैं। सशर्त निकासी-पत्रों की भाषा भी स्पष्ट नहीं होती और अकसर उनमें न तो समयसीमाएं दी होतीं, न संचालन निर्देश। अतीत में क्लियरेंस की शर्तों के रूप में पर्यावरण प्रभाव आकलन तथा प्रबंध योजनाएं मांगी जाती थीं, जबकि मंत्रालय द्वारा ये चीजें क्लियरेंस के पूर्व चाही जानी थीं।

इसका परिणाम यह हुआ कि निर्माण कार्य बगैर पर्यावरण अध्ययन तथा कार्ययोजनाओं के ही जारी रहता है। कई बांधों में इलाके तो डूब में आ गए हैं लेकिन उसके कारण होने वाली वनों तथा जीव वनस्पतियों की हानि का तखमीना उपलब्ध नहीं है। सिंचाई चालू हो गई है, लेकिन कमान क्षेत्र विकास योजना का कहीं अता-पता नहीं है। लोगों के घरबार तो उजड़ गए हैं, लेकिन पुनर्वास कार्यक्रमों को अंतिम रूप अब तक भी नहीं दिया जा सका है। इधर, कुछ समय से पर्यावरण मंत्रालय ऐसी समरूप शर्तें लगाने लगा है जिसमें निर्माण कार्य और पर्यावरण उपाय साथ-साथ चलाए जाना जरूरी होगा। लेकिन, यह उसमें स्पष्ट नहीं होता कि उपाय कौन से हैं, कितने हैं तथा वे निर्माण के किस चरण के साथ-साथ चलेंगे।

देखरेख कार्यक्रमों के बारे में पर्यावरण मंत्रालय के क्षेत्रीय अधिकारी भी स्टॉफ की कमी से अपने हाथ बंधे हुए पाते हैं। जो थोड़े-से अधिकारी हैं उन्हें बांधों के अलावा खदानों, ताप-बिजलीघरों, उद्योगों अन्य परियोजनाओं की भी मॉनिटरिंग करनी होती है। इसीलिए परियोजना स्थलों के दौरे कर खुद अपनी आंखों यह देखने का मौका उन्हें यदा-कदा ही (वर्ष में एक-दो बार) मिल पाता है कि शर्तों का पालन हो रहा है या नहीं। इन अधिकारियों को पर्यावरण उपायों के क्रियान्वयन के अलावा विशेषज्ञता तथा अन्य एजेंसियों यानी वन प्रतिपूरक वृक्षारोपण विभाग के साथ समन्वयन की कमी जैसी कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है।

इस बात के कोई ठोस प्रमाण नहीं हैं कि बड़े बांध लागत प्रभाव तथा सामाजिक दृष्टि से वांछनीय होते हैं, लेकिन इसके बावजूद यदि हम हमारे नियोजकों की यह दलील मान लेते हैं कि वे देश के लिए आवश्यक हैं तो यह साफ है कि आयोजना में पर्यावरण सुरक्षा उपायों को भी शामिल करने की उनकी अब तक की सारी बातें खोखली थीं। यदि पर्यावरण तथा वन मंत्रालय तत्काल कोई कदम इस बारे में नहीं उठाता है तो वह उत्तरोत्तर अपने अस्तित्व ही की तर्कसंगतता खोता चला जाएगा।